Research Paper | Education | E-ISSN No : 2454-9916 | Volume : 10 | Issue : 2 | Feb 2024



भारतीय संस्कृति में राष्ट्रीय एकता व इसकी विशेषताएँः एक विमर्श

रत्नेश पाण्डेय

शोध–छात्र

''मनुष्य का इतिहास साक्षी है कि जब कभी राष्ट्र और समाज में अनेकता उत्पन्न हुई है, तब देश का परिवेश खोखला हुआ है। भारत इसलिए पराधीन हुआ कि भारतीय जनता में आपसी एकता नहीं थी। जब भारतीय जनता में आपसी फूट का एहसास हुआ और जैसे ही एक आपसी एकता की आवश्यकता लोगों ने महसूस की, एकता रंग लाई और गुलाम भारत स्वतन्त्र हुआ। एकता वह केन्द्रीयतत्व है, जो लोगों के बीच शक्ति और साहस का संचार करती है। एकता शक्ति और संगठन का जीवन्त पर्याय है, अतः एकता ही शक्ति और संगठन का मूलमुंत्र है।''1

भारत की शैक्षिक, भाषाई एवं अध्ययनशीलता की परम्पराएँ ईसा की कई शताब्दियों पूर्व से चली आ रही है। भारतीय ग्राम्य जीवन में धर्म, कृषि कला एवं शिल्प की जड़े सिन्धु घाटी–सभ्यता तक विद्यमान हैं। कहा गया है– हिन्द देश के निवासी, सभी जन एक हैं, रंग–रूप वेश भाषा चाहे अनेक हैं। 2

अस्तु भारत में अनेक भाषा–भाषी लोग निवास करते हैं, फिर भी हमें उनमें एकता की झलक मिलती है। हमारा राष्ट्र संस्कृति का धर्म–गुरू रहा है। भारत सबकी आत्मा में एक समान बसा हुआ है। यही कारण है कि विश्व में भारत का गौरवपूर्ण स्थान रहा है। वेद, विश्ववाङ्मय के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं, जो ज्ञान–विज्ञान के आदि स्रोत के रूप में प्रतिष्ठित है। वेदों में राष्ट्र के स्वरूप , राष्ट्रीय भावना, राष्ट्रीय एकता तथा राष्ट्रीय प्रेम का वर्णन हमें उपलब्ध होता है। यजुर्वेद में आदर्श राष्ट्र के रूप की चर्चा करते हुए ऋषि परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि–

''ओऽम् आ ब्राहमन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः..........
.... पर्जन्यो वर्षतु फलवस्तो न औषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्।।''

अर्थात् हे प्रभो! हमारे राष्ट्र में विभिन्न विद्याओं के ज्ञाता ब्राह्मण, शूर, वीर, समर्थ अस्त–शस्त्रधारी, शत्रुदमन कर्ता क्षत्रिय अधिक दूध देने वाली गायें, बलवान् बैल और शीघ्रगामी घोड़े आदि पशुएँ, धारण–पोषण गुण वाली स्त्रियाँ, रथीविजेता, सभ्य युवक और विद्वानों का सत्कार, संगति और सुख प्रदान करने वाले यजमान तथा अभष्ट वर्षा, मधु–फलों से युक्त अन्न वनस्पतियाँ एवं औषधियाँ विद्यमान हों।'' ध्येय है कि प्राचीन ऋषियों ने भी राष्ट्रीय एकता का परिचय दिया है।

अथर्ववेद में 'राष्ट्र' को मातृस्वरूपा कहा गया हैय और इसके निवासी हम सभी इसके पुत्र हैं– ''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः''3 राष्ट्रीय एकता की कल्पना न सिर्फ वेदों में की गई हैय अपितु भारतय संस्कृति में भी राष्ट्रीय एकता का पुट भरा पड़ा है। दुर्गा का स्वरूप, राष्ट्रीय एकता के स्वरूप की ओर संकेत करता है, जहाँ ज्ञान, कला, विज्ञान का मणिकांचन संयोग परिलक्षित होता है। जिस राष्ट्र में मातृशक्ति का सम्मान होता है, वह राष्ट्र समृद्धि की ओर अग्रसर होता है– ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।''4 राम, कृष्ण बुद्ध का अवतार इसी भारत भूमि पर हुआ था, जो कि एकता का परिचायक है। आधुनिक युग में भी हम भारतीयों को राष्ट्रीय एकता और राष्ट्र प्रेम की चिन्ता है। भारत भूमि पर विभिन्न धर्म सम्प्रदय, जाति एवं विचार के लोग निवास करते हैंय फिर भी राष्ट्रहित के मामले में सभी एक जुट होकर एकता का परिचय देते हैं। यदि हम एक जुट होकर कार्य करते हैं, तो राष्ट्र की उन्नति सुनिश्चित हैय और यदि विभाजित होकर कार्य करेंगें तो राष्ट्र की अवनति ही होगी। अतः राष्ट्र के सुदृढ़ीकरण एवं सशक्तिकरण हेतु राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को एकता के सूत्र में बाँधने की आवश्यकता है।5

नागर जी का रचनाकार मानवतावाद और राष्ट्रीय एकत्व की भावना से प्रेरित होकर, भारत के सांस्कृतिक मानस को व्याख्यायित करना चाहता है। मानवतावाद उनकी कथा–यात्रा का प्रस्थानक विन्दु हैय और राष्ट्रीय एकत्व उसकी आखिरी मंजिल हैं। देश के सांस्कृतिक अतीत में वे इन दोनों ही तत्वों का अन्तर्भावन एक साथ करते हैं। वस्तुतः संस्कृति ही किसी देश की ऐतिहासिक गतिशीलता की कसौटी और चरित्र निर्मात्री होती हैं। मन और कायारूपी अश्वों की वल्गाशक्ति सम्पन्न संस्कृति सारथी के हाथों में हैं।6 महिपाल अपने देश की सांस्कृतिक सम्पदा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए व्यक्ति–व्यक्ति में उसे पहचानने की समझदारी देखना चाहते हैं।

''हिन्दुस्तान एक ऐसी बन्द विशाल हवेली की तरह है, जिसमें बेशुमार अनुपम रत्न–मणियों और ककंड़–पत्थर, कूड़े–कचरे के ढेर सब एक साथ मिलकर चारों ओर बुरी तरह छितरा हुआ है। इस हवेली को नये सिरे से आबाद करने वाले समाज के ऊपर लाजिमी तौर पर यह जिम्मेदारी आ जाती है कि वह अपनी रत्न–मणियों को कूड़े से निकालकर सहेज ले। कहीं ऐसा न हो कि कूड़े–कचरे के साथ हमारे घर की बेशुमार दौलत भी धूरे पर चली जायय और ऐसा भी न हो कि माण्यिँ बीनने के कठिन काम से आलस्य करते हुए हम अपने घर के इस कूड़े–कचरे की सडाँन्ध में ही घुटते बैठे रहें।''7

'संस्कृति' मनुष्य की जीवनी शक्ति और राष्ट्र के वैभव को बढ़ाने की भावना से युक्त है। यदि वह कालचक्रवश घटने की परिस्थिति में आ भी जाता है, तो भले ही वहाँ तक आ जाय कि सब कुछ खण्डहर हो जाय फिर भी राष्ट्र का वैभव अपने खण्डहर में बोलता रहता हैय और विगत वैभव को सदा आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है।8 भारतीय संस्कृति में अनेक देशी–विदेशी संस्कृतियों का संगम है। भारत में ज्ञान तथा धन के लोभ सहस्रों विदेशी जातियाँ आयीयं और यहाँ के रंग–ढंग में ढल गईं। अंग्रेजों के शासनकाल में हिन्दु–मुस्लिम संस्कृतियाँ परस्पर घुल–मिल गई थीय किन्तु असामाजिक तत्वों के दुष्प्रभाव और राजनीतिक कुचक्र के कारण देश में हिन्दु–मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगे होने लगेय और पारस्परिक भ्रातृ–भावना विलुप्त होने लगी। राष्ट्रीय एकता की भावना को साकार करने के लिए– ''हमें अपने देश में राष्ट्र की परिभाषा को व्यापक बनाना ही होगा। हमें वह संस्कार अपने भीतर जगाना ही होगा, जिससे सिन्धु तट पर होने वाले आक्रमण की बात सुनकर काशी का नागरिक कह उठे कि मेरे देश पर आक्रमण हुआ। जब तक देश अथवा राष्ट्र की यह महाभावना हमारे अन्दर उत्पन्न नहीं होती है, तब तक हमारा कल्याण नहीं है। ऋग्वेद कहता है कि मानव जाति एक ही है– ''एकैव मानुषी जातिः।'' और सब मनुष्य भाई हैं– ''भ्रातरो मानवाः सर्वे।''9

प्रत्येक संस्कृति जन और भूखण्ड विशेष के पारस्परिक सम्बन्ध और क्रिया प्रतिक्रिया का फल होती हैय अतः संस्कृतियों में ऊँच–नीच का प्रश्न करना असंगत प्रतीत होता है। मानवता के आदर्शों के दृष्टिकोण से उनका मूल्यांकन तो आवश्यक और तर्कसंगत ही दीख पड़ता है। इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम विशेषता, जो हमें भारतीय संस्कृति में दिखाई पड़ती है, वह है उसकी दीर्घकालीन स्थिरता (स्थायित्व)। मानव के इतिहास में 5000 वर्षों का समय कुछ बहुत महत्व का नहीं हैय परन्तु अनेक मानवीय संस्कृतियों में दो ही ऐसी संस्कृतियाँ हैं।10 चीन और भारतीय, जो इस सारे समय में अवाध और सतत् रूप से स्थायी रही हैं। मिश्र, बाबुली, असुर क्रीट, यूनानी और रोमक सभ्यताएँ उच्च स्तरों को प्राप्त होकर कालान्तर में समाप्त हो गईं । उनकी भाषा, धर्म, कला–कौशल विज्ञान वास्तविक रूप में अब विलुप्त हैय परन्तु भारत में भाषा, धर्म, साहित्य, नीति, कला सामाजिक व्यवस्था सभी दिशाओं में आदर्श, रचनात्मक जीवन और नीति, कला, सामाजिक व्यवस्था सभी दिशाओं में आदर्श, रचनात्मक जीवन और क्रिया–कलाप 5000 वर्षों से एक मार्ग पर चले आ रहे हैं।11 आज भी आधुनिक भारतीय इन्हीं का पुनुरूद्धार करने को ही लालायित हैं।

वेद, उपनिषद्, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत, बुद्ध, राम, कृष्ण, कपिल, व्यास, वशिष्ठ, सीता, सावित्री आदि ऐसे शब्द हैं, जो आज भी 80 प्रतिशत भारतीयों को पुलकित कर देते हैंय और उनके हृदयों में श्रद्धा और आदर की भावनाएँ जागृत कर देते हैं।

भारतीय संस्कृति की यह स्थिरता भारतीय जीवन के प्रति उसकी अनुकूलता और उपयोगिता को स्पष्ट रूप से प्रकट करती है। यह सच है कि कालान्तर में उसमें ऐसी मिलावटें हो गई हैं, जो उसकी आधुनिक उपयोगिता को घटा देती हैंय फिर भी मूल रूप से क्या देशी और क्या विदेशी चिन्तक भारत के लिए ही नहीं वरन् संसार के लिए उसके अनेक अंग मूल्यवान् ही नहींय आवश्यक और महनीय बतलाते हैं। कवि इकबाल के शब्दों में – ''कुछ बात ही है जो उसका अस्तित्व अभी तक नहीं मिट सका है।12

उसकी दूसरी विशेषता– उसकी विविधता और सम्पन्नता है। विदेशियों ने भारत को जातियो, भाषाओं, मतमतान्तरों और रीति रिवाजों का अजायबघर और संग्रहालय कहकर पुकारा है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक की यात्रा में आकर वर्ण, भाषा, व्यवसाय, रीतिरिवाज, रहन–सहन और मतमतान्तर की ऐसी विविधताएँ मिलती हैं कि साधारण तथा उपरोक्त कथन की ही पुष्टि दीख पड़ती हैय परन्तु इन विविध् ाताओं के पीछे जो आधारभूत एकता है, वह कुछ अधिक गम्भीर चिन्तन करने पर ही दिखाई पड़ी है।

भारतीय संस्कृति की तीसरी विशेषता उसकी संश्लेषणत्मक प्रतिभा है। ऊपर से देखने पर वह संसार की सबसे अधिक निषेधात्मक और पृथकत्वप्रिय संस्कृति दिखलाई पड़ती हैय परन्तु यह विचारणीय है कि अनेकानेक प्रजातीय प्रलय समान आक्रमणें को झेलते हुए, यदि यह शक्ति उसमें न होती तो कदाचित वह बहुत पहले बाबुल, असुर और भवन संस्कृतियों की तरह विलुप्त हो गई होती।

भारत के धार्मिक चिन्तन और जीवन में कुछ ऐसी विशिष्टताएँ हैं, जो उसे दूसरी संस्कृतियों से अलग कर देती हैं–

A. भारतीय संस्कृति आदि काल से ही एक आस्तिक संस्कृति रही हैय और उसने व्यष्टि और समष्टियों में सारे चराचर जगत् में एक अन्तरंग एकता की भावना को प्रधान स्थान दिया है। उसने सारे जगत् को एक चैतन्य शक्ति– आत्मा अथवा ब्रह्म से समाहित और उसी की अभिव्यक्ति का माध्यम माना है। इस विश्वास के कारण अहिंसा का सिद्धान्त उसका एक विशिष्ट लक्षण बन गया है। जब प्राणी मात्र सब एक हैं, तो उसमें बैर कैसा, इसी स्रोत से उसकी अनेक अन्य भावनाएँय और आदर्श निकले हैं। जैसे प्राणिमात्र के प्रति वात्सल्य और करूणा का व्यवहार, धार्मिक सहिष्णुता, मनुष्य के अनेक आध्यात्मिक विश्वासों के पालन करने में पूर्ण स्वातन्त्रय के स्वत्व आदि। इस आध्यात्मिक ऐक्य की अनुभूति के लिए उसने अनेकानेक वैज्ञानिक कार्यों का अन्वेषण किया है, जो बड़ी सूक्ष्म खोज पर आधारित हैय और तर्क रहित अन्धविश्वास और श्रद्धा के विषय नहीं हैं।13
B. भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन में कर्म का सिद्धान्त प्रधान हैं। मनुष्य के कर्म आध्यात्मिक भविष्य नहीं बना सकते । उसके कर्म के बल से भगवान् भी उसकी उपेक्षा नहीं कर सकते। कर्म का सिद्धान्त अभी भारतीय 'धर्मों' को एक श्रृंखला में बाँध देता है।
C. पुनर्जन्म का सिद्धान्त भी भारतीय अध्यात्म का एक विशिष्ट अंग है, जो उसे संसार की दूसरी संस्कृतियों से विशिष्ट स्थान देता है। उसके अनुसार मनुष्य अपने कर्मानुसार बार–बार जन्म लेता और मरता है। अपने वैयक्तिव विकास के लिए मनुष्य को असीमित अवसर प्राप्त हैं। वह देर–सवेरे देवत्त्व प्राप्त कर सकता है। एक जीवन के क्रिया–कलाप से ही उसके पाप–पुण्य का फैसला अनन्तकाल के लिए नहीं हो जाता है।
D. 'त्याग' और 'तप' के सिद्धान्त भी सदा से ही भारतीय संस्कृति के विशिष्ट चिह्न रहे हैं। तप से ही यह सृष्टि पैदा हुई है। तप से ही इस सृष्टि का पोषण हो रहा है। तप के बिना न परमार्थ और न ही कोई अन्य लाभ प्राप्त किया जा सकता है। 'त्याग' अर्थात् अपनी आवश्यकता से अधिक लाभ का संग्रह या उसके प्रति ममता अथवा लोभ, सदा से ही वर्जित माना गया है।
E. भारतीय संस्कृति ने समन्वित जीवन पर सदैव ही बल दिया है। अर्थोपार्जन गृहस्थ जीवन, लौकिक कर्तव्य एवं इहलौकिक अभ्युदय पर उतना ही बल दिया गया है, जितना त्याग और वैराग्य पर। मानव–जीवन को चार आश्रमों में विभाजित करके ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास, लोक और परलोक के हेतुओं को समान रूप से स्थान दे दिया गया है। जो लोग भारतीय संस्कृति के निराशावादी या सांसारिक अभ्युदय का विरोधी कहते हैं, वे उसके वास्तविक स्वरूप से अनभिज्ञ ही कहे जा सकते हैं।14

अस्तु, मैंने 'भारतीय संस्कृति में राष्ट्रीय एकता व इसकी विशेषताओं पर, यथामति प्रकाश डालाय यूँनो विवेचन की प्रोढ़ि व विस्तार की सीमा नहीं है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 ईश्वरचन्द्र, 'भारतीय दर्शन एवं संस्कृति', एस0के0 पब्लिशिंग कम्पनी रांची (बिहार) संस्करण 2012 पृ0 129
2. वही, पृ0सं0 129
3. वही, पृ0सं0 130–131
4. वही, पृ0सं0 131
5. वही, पृ0सं0 131
6. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी, 'अमृतलाल नागर के उपन्यास', आनन्द प्रकाशन फैजाबाद, प्रथम संस्करण 1981 पृ0सं0 293
7. वही पृ0सं0 294
8. वही पृ0सं0 294
9. वही पृ0सं0 295–297
10. भटनागर तथा शुक्ल 'आधुनिक भारतीय संस्कृति का इतिहास', रतन प्रकाशन मन्दिर, प्रथम संस्करण 1978–79 पृ0सं0 523
11. वही पृ0सं0 523
12. वही पृ0सं0 523
13. वही पृ0सं0 17–18
14. वही पृ0सं0 525–527